अध्याय द्वितीय

महादेवी वर्मा की काव्य कृतियों का भाव-लोक

द्वितीय अध्याय

महादेवी वर्मा की काव्य कृतियों का भाव-लोक

महादेवी वर्मा भावलोक को स्पष्ट करते हुए कहती है- सुख-दु:ख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वरसाधना के उपर्युक्त चित्रण कर देना ही गीत है। इसमें कवि को संयम की परिधि में बंधे हुए जिस भावातिरेक की आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नहीं, कारण हम प्राय: भाव की अतिश्यता में कला की सीमा लाँघ जाते हैं और उसके उपरान्त, भाव के संस्कारमात्र में मर्मस्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ- दु:खातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्तक्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है जिसमें संयम का नितान्त अभाव है, उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में भी है जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की सम्भावना रहती है, उसका प्रकाश एक दीर्घ निश्वास में भी है जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव

में गीत के कवि को आर्त्तक्रन्दन के पीछे छिपे हुए दु:खातिरेक को दीर्घ विश्वास में छिपे हुए संयम से बांधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव उद्रेक करने में सफल हो सकेगा। गीत यदि मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है तो इसमें सन्देह नहीं। मीरा के हृदय में बैठी हुई नारी और विरहिणी के लिए भावातिरेक सहज प्राप्य था, उसके बाह्य राजरानीपन और आन्तरिक साधना में संयम के लिए पर्याप्त अवकाश था। इसके अतिरिक्त वेदना भी आत्मानुभूत थी अत: उसका 'हेली मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोय' सुनकर यदि हमारे हृदय का तार-तार उसी ध्वनि को दोहराने लगता है, रोम-रोम उसकी वेदना का स्पर्श कर लेता है तो यह कोई आश्र्य की बात नहीं है। सूर का संयम भावों की कोमलता तथा भाषा की मधुरता के उपर्युक्त ही है। परन्तु कथा इतनी पराई है कि हम बहने की इच्छा मात्र लेकर उसे सुन सकते हैं बहते नहीं और प्रात:स्मरणीय गोस्वामी जी के विनय के पद तो आकाश की मन्दाकिनी कहे जा सकते हैं, हमारे कभी गंदली कभी स्वच्छ वेगवती सरिता नहीं। मनुष्य की चिरन्तन अपूर्णता का ध्यान कर उनके पूर्ण इष्ट के सम्मुख हमारा मस्तक श्रद्धा से, नम्रता से नत हो जाता है। परन्तु प्राय: हृदय कातर क्रन्दन नहीं कर उठता। इसके विपरीत कबीर के रहस्य भरे पद हमारे हृदय को स्पर्श की सीधे बुद्धि से टकराते हैं। अधिकतर हममें उनके विचार ध्वनित हो उठते हैं भाव नहीं जो गीत का लक्ष्य है।[1]

महादेवी वर्मा की काव्यकृतियों का भाव लोक तीन धरातलों पर अवस्थित है- 1. मानव प्रेम, 2. आश्चर्य का भाव, 3. आत्मा का परमात्मा से विरहानुभूति। जो महादेवी के काव्य को रहस्यवाद के धरातल पर स्थापित करता है। निम्न पंक्तियों में इसी आश्चर्य के भाव का बड़ा सुन्दर और रहस्यात्मक काव्यमय भावचित्र अंकित किया है-

---

1. महादेवी वर्मा : सान्ध्य गीत, पृ० 10-11.

शून्य नभ में उमड़ जब दुःख भार सी,
नैश तम में सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की पंक्ति भी,
जब सुनहले आंसुओं के हार सी,
तब चमक जो लोचनों को मूंदता,
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है?[1]

शंभुनाथ सिंह के शब्दों में- 'छायावादी युग की आध्यात्मिक रंग में रंगी कविता की प्रधान धारा रहस्यवाद है। रहस्यवाद विश्व की परम् सत्ता का बोध ओर साक्षात्कार है।..... यह आध्यात्मिक अनुभूति की वह अवस्था है, जिसमें साधक परमात्मा के मिलन का चरम प्रयास करता है। यह क्रिया कई साधना पद्धतियों से सम्पन्न होती है।'

अहम् (आत्मा) और इदम् (जगत्) का समन्वय तभी हो सकता है, जब साधक की दृष्टि आध्यात्मिक तथा सूक्ष्म हो और उसकी अनुभूति परिपक्व हो गई हो।[2]

महादेवी वर्मा काव्य में रहस्य का प्रयोग उस असीम चेतन के लिए मानती है जो ससीम हृदय में समाया है। जो प्रकृति के विविध एवं परिवर्तनशील रूपों में दिखाई देता है- 'जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसका ससीम हृदय में समाया हुआ था। तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा। परन्तु इस सम्बन्ध में मानव-हृदय की सारी प्रयास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुरागजनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं धुल जाता, तब

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 81.
2. शंभुनाथ सिंह : छायावाद युग, पृ० 70.

तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरा सीमातीत नहीं हो जाती, तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया।'[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी रहस्य भावना को रमणीय और मधुर माना है, किन्तु वे उसके उसी स्वरूप को वांछनीय समझते हैं जो स्वाभाविक तथा और अनुभूतयों के बीच कभी-कभी प्रकरण प्राप्त होने पर व्यक्ति हुई है।[2] डॉ० श्यामसुन्दर दास के अनुसार- 'अज्ञात और अव्यक्त सत्ता के प्रति जिनमें भाव प्रकट किये जाते हैं, वही कविता रहस्यवाद कही जा सकती है।'[3] विश्वम्भर मानव आत्मा और परमात्मा के पारस्परिक प्रणयानुभूति को रहस्यवाद मानते हैं।[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता है कि 'अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद की भावना से सूक्ष्य और उच्च कोटि की रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।'[5] मुकुल आचार्य ललिता प्रसाद काव्य के क्षेत्र में 'अज्ञेय' की सांकेतिक रसमयी सूचना को रहस्यवाद कहना अधिक समीचीन समझते हैं।[6] प्रो० विनयमोहन शर्मा के अनुसार 'रहस्य का अर्थ है गुप्त, प्रच्छन्न या अव्यक्त और जिसमें गुप्त, प्रच्छन्न और अव्यक्त का उल्लेख है, वही रहस्यवाद है।' डॉ० केशरी नारायण शुक्ल ने रहस्यवाद को विश्व की परम् सत्ता का बोध और साक्षात्कार माना है। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार- 'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त

---

1. महादेवी वर्मा : साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० 94.
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, भाग 2, पृ० 130-31.
3. डॉ० श्यामसुन्दर दास : हिन्दी साहित्य, पृ० 392.
4. विश्वम्भर मानव : सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० 115.
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थ की भूमिका, पृ० 160.
6. आचार्य ललिता प्रसाद शुक्ल : रहस्यान्वेषण में छाया की प्राप्ति, पृ० 193.

और निरछल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।'[1] डॉ० भगीरथ मिश्र के अनुसार- 'एक अदृश्य, असीम और निराकार शक्ति का अपने अथवा विशव के व्यापारों के अन्तर्गत व्याप्त रूप में अनुभव करना ही रहस्य भावना का मूल है और जहाँ पर उसके साथ भावात्मक सम्बन्ध का प्रकाशन आ जाता है वहीं पर वह काव्य के अन्तर्गत रहस्य-भावना कही जाती है।'[2]

अलौकिक और रहस्यमयी प्रेमाभिव्यक्ति को लौकिक प्रेम की तीव्रता तथा मिलन-विरह के क्षणों की मादक, मधुर एवं मर्मस्पर्शी अनुभूतियों द्वारा दाम्पत्य भाव के संकेतों से सजीवता महादेवी ने दी है और उसके दर्शन की अभिलाषा के कारण कल्पना-स्तर पर ही संयोग और वियोग की अनुभूति करती है। इन्हीं संयोग-वियोग जनित रहस्यानुभूतियों का रमणीय प्रकाशन महादेवी के काव्य में हुआ है। महादेवी की रहस्यानुभूति रहस्यवाद की सभी विशेषताओं से युक्त होने पर भी उससे कुछ भिन्न है। उनकी रहस्य भावना ने 'परा भावना की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भाव में बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिक प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।'[3]

महादेवी उसी परमब्रह्म रूपी प्रियतम के ध्यान में मग्न हो जाती है परन्तु जब उन्हें अपनी वियुक्तावस्था का ध्यान आता है, तब वह अत्यन्त विह्वल एवं विषादमग्न हो जाती है। उसकी आत्मा खोई-खोई सी रहती है और उसे लगता है कि वह कहीं कुछ भूल आयी हैं। उसकी आत्मा को जब यह ज्ञान

---

1. डॉ० रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद, पृ० 7.
2. डॉ० भगीरथ मिश्र : हिन्दी कछव्य रहस्य-भावना, साहित्य, साधना और समाज, पृ० 73.
3. महादेवी वर्मा : सान्ध्यगीत, पृ० 7-8.

होता है कि उस परमानन्द में सर्वशक्तिमान से अलग होने के कारण ही वह उस अखण्ड आनन्द से वंचित हो गई है, तब उसका (आत्मा-परमात्मा) रहस्य-व्यापार आरम्भ हो जाता है। प्रिय-मिलन की अतृप्त इच्छा के कारण उनकी विरह-वेदना से व्यक्तिगत मन को मात्र एक ही मार्ग दिखाई पड़ता है और वह मार्ग है साधना का। अग्नि में तप कर परमात्मा में लीन होना उनके हृदय में उस अज्ञेय की स्मृति के सदैव ही एक कसक, एक वेदना, एक टीस-सी उत्पन्न होती रहती है, उसका हृदय-स्पन्दन रूकने लगता है, अभाव उसकी विस्मृति-सरिता के कूलों को अच्छादित कर लेता है और वह परम विह्वला हो कह उठती हैं-

कहाँ से आयी हूँ कुछ भूल
कसक कसक उठती सुधि किसकी,
रूकती सी गति क्यों जीवन की
क्यों अभाव छाये लेता, विस्मृत-सरिता के कूल॥

कवयित्री की यह जिज्ञासा तब अत्यन्त प्रबल हो उठती है जब वह देखती है कि प्रकृति के अकलुष सौन्दर्य का सृजनकर्ता, स्वर्णवत् दिवस, मुक्तावत् रजनी, स्वर्णिम सन्ध्या तथा गुलाबी उषा एवं विनशकर्त्ता कोई ऐसा चित्रकार है जो बार-बार संसार के इन विभिन्न चित्रों को रंगता और मिटाता है। आखिर यह चित्रकार कौन है?-

कनक से दिन, मोती सी रात, सुनहरी सांझ, गुलाबी प्रात,
मिटाता रंगता बारम्बार, कौन जग का यह चित्राधार।[2]

प्रिय के प्रति अनुरक्त महादेवी कह उठती हैं-

---

1. महादेवी वर्मा : रश्मि, पृ० 69.
2. वही, रश्मि, पृ० 6.

ससि में हूँ अमर सुहाग भरी,
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।[1]

परमात्मा वियुक्ता मानवात्मा उसके वियोग में विह्वल-व्यथित होती हुई अहर्निश अश्रुवृष्टि करती रहती है-

प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर दुःख से आविल सुख के पंकिल,
बुदबुद के स्वप्नों से फेनिल, बहता है युग-युग से अधीर।[2]

महादेवी ने प्रिया और प्रियतम के मधुर सम्बन्ध को अन्यतम मानकर उसे ही अपनाया है। उन्होंने अलौकिक तत्व को आलम्बन बनाकर नानाविध भावाभिव्यंजनाएँ की हैं। उस अज्ञेय के रहस्यमय व्यक्तित्व के कारण उनकी प्रणयानुभूति भी रहस्यमय हो गयी है। उसमें वासना का लेश भी नहीं है। उनका प्रियतम सगुण है पर साकार नहीं। सर्वात्म्भाव से अनुप्राणित कवयित्री सम्पूर्ण प्रकृति में उस प्रिय की मनोहर छवि का दर्शन करके हृदय को शीतल करती है।

अलौकिक रहस्यानुभूति भी अभिव्यक्ति में लौकिक ही रहेगी। अलौकिक आत्म समर्पण को समझने के लिए भी लौकि का सहारा लेना होगा। स्वभाव से मनुष्य अपूर्ण भी है और अपनी अपूर्णता के प्रति सजग भी। अतः किसी उच्चतम आदर्श, भव्यमय सौन्दर्यता पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आत्म समर्पण द्वारा पूर्णता की इच्छा स्वाभाविक हो जाती है।[3]

परामात्मा के प्रति आस्था महादेवी के हृदय में जन्मजात है। उन्हें विश्वास है कि इस सृष्टि में होने वाले परिवर्तनों के मूल में एक परम् शक्तिमान छिपा है जो दिन में सूर्य को कनक-रश्मियों और रात में चन्द्र को चाँदी के

1. महादेवी वर्मा : सान्ध्यगीत, पृ० 85.
2. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि, पृ० 47.
3. महादेवी वर्मा : साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० 109.

परिधानों से सजाता है। वही शक्तिमान रात्रि को नीरव अंधकार में आकाश को नक्षत्रों से चमकाता है, जिसकी सुषमा का एक कण सैकड़ों फूलों के उपवन खिला देता है और जिसके एक भ्रू-संचालन मात्र से धरती पर प्रलय हो जाता है-

तेरी आभा का कण नभ को,
देता अगणित दीपक दान,
दिन को कनक राशि पहनाता,
विधु को चाँदी का परिधान,
सुषमा का कण एक खिलाता,
राशि राशि फूलों के वन,
शत-शत झंझावात प्रलय
बनता पन में भ्रू संचालन।[1]

उस अलौकिक प्रिय का 'अरून बान' चुभते ही सृष्टि के कण-कण से मधु की धारा फूट पड़ती है। उसके स्पर्शमात्र से फूल खिल जाते हैं और उसके सुगन्ध से आकृष्ट होकर तितली उसके केशरमद का पान करने लगती है-

चुभते ही तेरा अरून बान!
× × × ×
पीत तितली के नवकुमार।[2]

आस्था के उपरान्त उसके मन में उस परम तत्व के प्रति कौतूहल तथा जिज्ञासा का भाव उत्पन्न होता है। इसकी मूल भावना परमात्मा में रूचि है जो अनेक कारणों से हो सकती है। प्रकृति के सौन्दर्य-विचित्र्य को देखकर

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 116.
2. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 71.

संवेदनशील हृदय में जिज्ञासाभाव का होना अनिवार्य है- इस अनन्तरूपों का स्रष्टा कौन है? विभिन्न परिवर्तनों के मूल में किसकी सत्ता निहित है? मानव-हृदय में निवास करने वाला, लुक-छिपकर आँख मिचौनी खेलने वाला कौन है? कवयित्री के मन में यह कुतूहल उत्पन्न होता है कि सृष्टि के पूर्व योगनिद्रा में मग्न आदि तत्व कौन था-

न थे जब परिवर्तन दिन रात
नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात,
व्याप्त क्या सूने में सब और,
एक कम्पन थी एक हिलोर?
न जिसमें स्पन्दन था न विकार,
न जिसका आदि न उपसंहार,
सृष्टि के आदि आदि में मौन,
अकेला सोता था वह कौन?[1]

जीवनदीप को सम्बोधित करते हुए महादेवी के मन में कई प्रश्न उठ खड़ा होते है-

किन उपकरणों का दीपक? किसका जलता है तेल?
किसकी वर्ति? कौन करता इसका ज्वाला से मेल?
शून्यकाल के पुलिनों पर आकर चुपके से मौन
इसे बहा जाता लहरों में वह रहस्यमय कौन?[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में सृष्टि के कण-कण में होने वाले परिवर्तनों, इसके निर्माण और ध्वंस के पीछे छिपी परम शक्ति के स्वरूप को जानने की स्वाभाविक जिज्ञासा स्पष्ट परिलक्षित होती है।

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 80.
2. वही, पृ० 81.

प्रिय के अनन्त सौन्दर्य को देखकर कवयित्री के मन में प्रेम की कोमल भावनाएँ जन्म लेने लगती है। वह उस असीम सत्ता से अपना मधुर दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित करती है। प्रकृति के मादक वातावरण में कली और मधुमास के मध्य होने वाले प्रणय-व्यापार को देखकर उसे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उसका प्रिय उसे जीवन-संगीत सुनाने के लिए उपस्थित हो गया हो-

निशा को धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल
अटक जाता था पागल वात
घूलि में तूहिन कणों के हार
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार।[1]

प्रणय की इस मादक अनुभूति का अनुभव मात्र कवयित्री ही नहीं करती अपितु उनके प्रियतम को भी इसकी अनुभूति होती है, परन्तु विडम्बना की बात यह है कि उसका प्रियतम अपने हृदय के प्रणय-भाव को अभिव्यक्ति नहीं दे सका-

मूक प्रणय से मधुर व्यथा से
स्वप्न लोक के से आह्वान
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान।[2]

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 1.
2. वही, पृ० 2.

कवयित्री के हृदय का कल्पना-स्तर पर की गयी यह प्रणयानुभूति संतोष नहीं दे सका। वह प्रियतम का साक्षात्कार चाहने लगी। उसके जीवन की सभी अभिलाषाएँ केवल मिलने की इच्छा में केन्द्रित हो गई और जब वह अपने को वहाँ पहुँचने में असमर्थ समझने लगी तब प्रियतम को ही बुलाने लगी-

एक बार आओ इस पथ से
मल अनिल बन है चिर चचंल।[1]

कवयित्री को ऐसा विश्वास है कि उसके जीवन में एक बार भी उसके प्रियतम का आगमन हो जाता तो उसके हृदय की सारी करूणा और सारे संदेश पथ में पराग बनकर बिछ जाते। उसके आर्द्र नयन हंसने लगते, होठों से विषद की रेखाएँ मिट जाती और जीवन में सुखमय वसंत का बहार छा जाता-

जो तुम आ आते एक बार,
कितनी करूणा कितने सन्देश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार-तार
अनुराग भरा उन्माद राग
आँसू लेते वे पग पखार।[2]

प्रिय-मिलन की तीव्र अभिलाषा होने के कारण वह बार-बार उससे अनुनय-विनय करती है, परन्तु उसका वह प्रियतम बड़ा ही छलिया निकलता है। वह एक बार उसके जीवन में नहीं आ पाता। जब कवयित्री की मिलने की इच्छा बिल्कुल ही पूर्ण नहीं हो पाती, तब वह कम से कम स्वप्न में ही

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 166.
2. वही, पृ० 65.

उसे प्राप्त करने की कामना करने लगती है-

तुम्हें बाँध पाती सपने में!
तो चिर जीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण में।[1]

महादेवी को प्रिय का साक्षात्कार कल्पना में हुआ है अथवा वास्तविक जगत्- वह क्षणिक ही रहा। उनकी आत्मा विरह में व्याकुलता का अनुभव करती है, जिससे उनके अधिकांश काव्य इस विरह-वेदना से आप्लावित है। कभी यह प्रिय पथ में आँखें बिछाये उसके प्रतीक्षा करती है कभी आँसू बहाती है कभी प्रियतम द्वारा न पहचाने जाने पर विक्षोभ प्रकट करती है, कभी इसके आगमन का संकेत मुस्कराते नभ में देख आशान्वित हो उठती है। वह अपने प्रिय को बुलाने के लिए श्रृंगार भी करती है-

शशि के दर्पण में देख-देख
मैंने सुलझाए तिमिर केश।[2]

पलभर के लिए ही उनके नयन से प्रिय के नयन मिले और वे उत्पात मचा कर चले गये-

चल चितवन के दूत सुना
उनके पल में रहस्य की बात
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गये क्या-क्या उत्पाद।[3]

उस क्षणिक मिलन की अनुभूति की तीव्रता से उसका अनुरागी मन उसकी विरह-ज्वाला में जलने लगा। उसके हृदय में पीड़ा का अखण्ड साम्राज्य

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 136.
2. वही, पृ० 215.
3. वही, पृ० 3.

स्थापित हो गया-

पीडा का साम्राज्य बस गया,
उस दिन क्षितिज के पार।[1]

उसके हृदय के मधुर प्रणय भाव छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये और जीवन में निराशा छा गयी। उसकी सारी अभिलाषाएँ पीड़ा में डूब गई-

शून्य को छूकर आये लौट
मूक होकर मेरे निश्वास,
बिखरती है पीड़ा के साथ
चूर होकर मेरी अभिलाष।[2]

अब विरहिणी के जीवन में प्रतीक्षा ही शेष रही। प्रिय की प्रतिक्षा और स्मृति उसके जीवन की निधि बन गई। हृदय में वेदना को छिपाये, सजग होकर प्रिय की बाट जोहती है-

सजग लखती थी तेरी राह
सुलाकर प्राणों में अवसाद,
पलक प्यालों से पी पी देव!
मधु आसव सी तेरी याद।[3]

उसके हृदय में एक मधुर कसक होने लगती है। उसकी चंचल पुतलियाँ चित्रित निद्रित सी, निश्चल सी हो जाती है। नेत्रों में सोया हुआ पारावार उमड़ पड़ता है और उसकी हृदय-वीणा मौन हो जाती है। वाह्य जगत् का घना अंधकार उसके हृदय के दु:खान्धकार का प्रतिबिम्ब हो जाता है। अन्त: और वाह्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता, अन्तर्गत का बाह्य जगत अन्तर्गत में

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 3.
2. वही, पृ० 44.
3. वही, पृ० 54.

प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ने लगता है। वह अत्यधिक खिन्न हो कर उठती है-

बाहर घनतम, भीतर दुखतम, नभ में विभुत् तुझि में प्रियतम;
जीवन पावस रात बनाने सुधि बन छाया कौन?[1]

महादेवी को भावालोक में किसी का भी विघ्न असह्य है। महादेवी का वियोग दु:ख कोकिल की तीव्र ध्वनि से अधिक उद्दीप्त हो जाता है और वे विह्वल होकर उससे मन्द स्वर में बोलने की प्रार्थना करती है-

'मुखर पिक होले होले बोल!
हठीले होले होलेबोल।'[2]

विरह की वेदना उनकी काव्य कृतियों में निर्झर बहती है, वह भावालोक को नियति के विधान के अधीन बताती है। विरह की वेदना सहते-सहते जब विरहिणी निढाल हो गई है तो उसे लगता है कि नियति ने उसके क्षणभंगुर जीवन में निराशा, दु:ख और रोदन का ही विधान किया है-

'मैं नीर भरी दु:ख की बदली!
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।'[3]

इतना रोने-धोने के बाद भी प्रियतम के नहीं आने से उसकी आशा निराशा में बदल जाती है। अब विरोग का दु:ख सहने के अलावाँ और कोई विकल्प नहीं रह जाता है, जिसके परिणामस्वरूप सुख और दु:ख में तादात्म्य का अनुभव करती है। तन्मयता की स्थिति में विरह ही मिलन प्रतीत होने लगता

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 137.
2. महादेवी वर्मा : नीरजा, पृ० 35.
3. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 233.

है। वह विरह में ही चिर हो जाती है और मिलन का तिरस्कार करती हुई कहती है-

मिलन का नाम मत ले
मैं विरह में चिर हूँ।[1]

इतना ही नहीं अन्ततः विरह से उनका ऐसा लगाव हो जाता है कि वही आराध्य बन जाता है-

विरह बिना आराध्य
द्वैत क्या कैसी बाधा।[2]

साधना के पथ निरन्तर बढ़ने वाली साधिका को अब विरह का कोई कष्ट नहीं रहा। सुख और दुःख अभिन्न हो गये। अब विरह के आयाम के विषय में उसने सोचना ही छोड़ दिया है-

मैं क्यों पूँछ यह विरह निशा
कितनी बीती क्या शेष रही?

× × × ×

क्षण गुंजे औ यह कण गावे,
जब वे इस पथ उन्मन आवें।[3]

महादेवी वर्मा भी विरह की चरमावस्था में पहुँचकर प्रियतममय हो जाती हैं, जिससे उनकी वियोग-वेदना को आनन्द का बोध होने लगता है। ऐसा आभाष होने लगता है कि प्रियतम उनके रग-रग में समाहित है और उनके साथ परिचय की अब कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। प्रिया और प्रियतम का यह अभैव सम्बन्ध अद्वैतवादी सिद्धान्तों के अनुकूल प्रतीत होने लगता है-

---

1. महादेवी वर्मा : सान्ध्यगीत, पृ० 37.
2. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 219.
3. महादेवी वर्मा : दीपशिखा, पृ० 116-117.

तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या!
चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम
मधुर राग तू मैं स्वर-संगम,
तू असीम के सीमा का भ्रम
काया छाया के रहस्यमय
प्रेयसि प्रियतम का अभिनव क्या।[1]

प्रेयसी और प्रियतम का यह सम्बन्ध अत्यधिक पुरातन है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसी सम्बन्ध को इस पंक्तियों में निर्दिष्ट किया है-

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दी सीताराम पद, जिन्ह ही परम प्रिय खिन्न।[2]

कबीर ने निम्नलिखित पंक्तियों में इसी भाव को व्यक्त किया है-

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कहो ज्ञानी।[3]

छायावाद के पुरोधा कवि जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' के 'चिन्ता सर्ग' की प्रारम्भिक पंक्तियों में इसी बात की पुष्टि करते हैं-

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था एक सघन
एक तत्व की ही थी प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।[4]

कवयित्री का यह मिलन भी वाह्य मिलन या शारीरिक मिलन न

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 147.
2. गोस्वामी तुलसीदास : रामचरित मानस (बालखण्ड), पृ० 28.
3. कबीर
4. जयशंकर प्रसाद (सं०) : प्रसाद- ग्रन्थावली, भाग 1, पृ० 413.

होकर मानसिक मिलन है। इस मिलन के लिए शत-शत ज्वालमालाओं से, अंगार पंथों से शूलमय वीथियों से आत्म-समर्पण करती हुई आगे बढ़ती हैं। महादेवी उन सभी कष्टों को सहर्ष झेलती हुई आगे बढ़ती हैं। वास्तव में प्रियतम को अपने हृदय में पाने का अनुभव संसार के समस्त सुखानुभूतियों से प्रबल एवं विचित्र है। महादेवी का प्रियतम नयन पथ से आकर उनके स्वप्न में मिलकर प्यास में घुलकर और साध में खिलकर उन्हीं में खो गया-

नयन पथ से स्वप्न में मिल,
प्यास में घुल साध में खिल,
प्रिय मुझही में खो गया
अब दूत को किस देश भेजूँ?[1]

महादेवी प्रिय मिलन की कामना तो करती है किन्तु इसके लिए वह अपना अस्तित्व मिटाना नहीं चाहती। उनके हृदय में करूणा एवं वेदना की अधिकता के कारण वे इन गुणों के अभाव में स्वर्ण भी स्वीकार करना नहीं चाहती है, क्योंकि जिस लोक में जलने और मिटने की अनुभूति प्राप्त न हो सके उस लोक को लेने से उन्हें ऐसा लगता है कि यह बिल्कुल निःसार है-

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद।
क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करूणा का उपहार?
रहने दो है देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।[2]

---

1. महादेवी वर्मा : दीपशिखा, पृ० 106.
2. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 7.

अपने प्रेम को शाश्वत एवं चिर नूतन बनाये के लिए महादेवी विरह को श्रेष्ठ समझती है क्योंकि कामनाओं की तृप्ति होते ही जीवन निष्फल हो जाता है। इसीलिए वह तृप्ति का एक कण भी प्राप्त करना नहीं चाहती-

चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन
बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन!

× × × ×

मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर
रहने दो प्यासी आँखें
भरती आँसू के सागर।[1]

वे स्वर्ग प्राप्त नहीं करना चाहती है, क्योंकि स्वर्ग-प्राप्ति निष्क्रियता का प्रतीक है। उनके तो रोम-रोम में स्वर्ग का आनन्द, प्रत्येक श्वास में शत-शत जीवन समाहित है और उनके प्रत्येक स्वप्न में अनेक विश्व बनते और मिटते हैं। जब इस प्रकार से उन्हीं में स्वर्ग समाहित है तो फिर काल्पनिक स्वर्ग की चाह करना भी औचित्य पूर्ण नहीं है-

रोम-रोम में नन्दन पुलकित
साँस-साँस में जीवन शत-शत
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित
मुझें नित बनते मिटते प्रिय
स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या?[2]

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 77.
2. वही, पृ० 147.

वे मुक्ति नहीं चाहती हैं। उनका तो जीवन के बन्धनों के प्रति सहज और स्वाभाविक लगाव है। उनके हृदय की मीठी कसक और प्रिय की स्मृति का दर्शन उनके प्रिय प्राप्ति के साधन हैं-

जिसके कसक सुधि का दर्शन
प्रिय में मिट जाने के साधन
वे निर्वाण-मुक्ति उनके
जीवन के शत बन्धन मेरे हों।[1]

ऐसे बन्धनों के प्रति अनुरक्ति रखने वाली महादेवी बन्धनों की कामना लेकर आने पर ही मुक्ति को स्वीकार कर सकती है। जिस जीवन बन्धन में प्रेम की अग्नि और जीवन की रागिनी है, वह बन्धन उन्हें प्रिय है-

क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन
× × × ×
नित सुनहली सांझ के पथ से
लिपट आता अंधेरा
पुलक पंखी विरह पर
उड़ आ रहा है मिलन मेरा।[2]

महादेवी के प्रणयानुभूति का आधार लौकिक है। उनके हृदय की प्रेम-भावना चिर सुन्दर के प्रति समर्पित है। उन्हें प्रकृति के कण-कण में उस अशरीरी अगोचर प्रियतम के दिव्यदर्शन होते हैं। उस सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होकर उनका पूर्णतया आत्म-समर्पण करना भी उनके रागात्मक सम्बन्धों को उनके माधुर्यमूलक प्रेम से सम्बन्ध में सामंजस्य स्थापित करने में समर्थ हो जाता है। उस अलौकिक के प्रति आत्म-समर्पण करने के सम्बन्ध में उनका

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 185.
2. वही, पृ० 285.

विचार है- 'अलौकिक आत्म-समर्पण को समझने के लिए लौकिक का सहारा लेना होगा। स्वभाव से मनुष्य अपूर्ण भी है और अपनी अपूर्णता के प्रति सजग भी। अतः किसी उच्चतम आदर्श, भव्यतम सौन्दर्य या पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आत्म-समर्पण द्वारा पूर्णता की इच्छा स्वाभाविक हो जाती है। आदर्श समर्पित व्यक्तियों में संसार के असाधारण कर्मनिष्ठ मिलेंगे, सौन्दर्य से तादात्म्य के इच्छुकों में श्रेष्ठ कलाकार की स्थिति है और व्यक्तित्व समर्पण में हमें साधक और भक्त दिये हैं।'[1]

महादेवी वर्मा के गीतों में भावलोक की पराकाष्ठा पायी जाती है। यों तो छायावादी कवियों में इस भाव का प्राचुर्य रहा है लेकिन महादेवी के गीतों में इस भावना ने पूर्णतया को प्राप्त किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस भावलोक के बारे में उनका यह सुचिन्तित विचार द्रष्टव्य है- 'मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुरागजनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का भाव दूर नहीं होता। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना।' ऐसे माधुर्यभावमूलक आत्मनिवेदन के सम्बन्ध में उनका मानना है कि यह कुछ उलझन भी उत्पन्न करता है। उनके शब्दों में- 'अनन्त रूपों की समष्टि के पीछे छिपे चेतन का कोई रूप नहीं। अतः उसके निकट ऐसा माधुर्यभामूलक आत्म-निवेदन कुछ उलझन उत्पन्न करता रहा है।'[2]

अलौकिक प्रियतम से जो मिलन होता है, वह मिलन भी उसी प्रियतम की भाँति अलौकिक होता है। महादेवी जिस आनन्द के अन्वेषण में

---

1. महादेवी वर्मा : दीपशिखा की भूमिका, पृ० 31.
2. वही।

हैं, वह आनन्द शाश्वत आनन्द ही शाश्वत आनन्द के प्रति उस अलौकिक प्रियतम के मोहक चिन्तन को पाते ही होने लगता है-

करूणामय को आता तम के परदे में आना
है नभ की दीपावलियों, तुम पल भर को बुझ जाना।[1]

प्रिय दर्शन की आकांक्षा से क्षण-क्षण बढ़ने वाले अधीरता के साथ हृदय का प्रेम-पिपासा तीव्रतर होती जाती है। अज्ञात प्रियतम के रूप सौन्दर्य की कल्पना प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य में ही की जा सकती है। इस प्राकृतिक सौन्दर्य का जितना सुन्दर आकलन हमारे प्राचीन वाङ्मय में किया गया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस सम्बन्ध में महादेवी का यह विचार अत्यन्त समीचीन जान पड़ता है- 'प्रकृति के अस्त-व्यस्त सौन्दर्य में रूप प्रतिष्ठा में, बिखरे रूपों में गुण प्रतिष्ठा फिर उनकी समष्टि में एक चेतन की प्रतिष्ठा और अन्त में रहस्यानुभूति का जैसा क्रमबद्ध इतिहास हमारा प्राचीनतम् काव्य देता है, वैसा अन्यत्र मिलना कठिन होगा।'[2]

प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में रत कवयित्री की आशा बड़ी बलवती है। वह प्रियतम की प्रतीक्षा में आँखें बिछाये बाट जोहती है परन्तु उसकी प्रतीक्षा चिर प्रतीक्षा में परिणत हो जाती है और उसके बाद भी वह निराश नहीं होती है। प्रेम की संवेदना में स्थित आशा, स्मृति तथा प्रतीक्षा का मणिकांचन संयोग इन पंक्तियों में हुआ है-

सजग थी तेरी राह
सुलाकर प्राणों में अवसाद
पलक प्यालों से पी पी देव
मधुर आसव से तेरी याद।[3]

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 24.
2. महादेवी वर्मा : दीपशिखा, पृ० 32-33.
3. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 54.

प्रियमिलन की बेला अपूर्व होती है। उस सुखद घड़ी के लिए अत्यन्त उल्लास के साथ प्रतीक्षारत कवयित्री अपने सौन्दर्य के प्रति सजग होने को बाध्य हो जाती है। वह नव्य साज-सज्जा के द्वारा प्रियतम को रिझाने के लिए तैयार हो जाती है। उनकी इन पंक्तियों में उनके प्रेमभावजनित श्रृंगार-कामना का रूपांकन द्रष्टव्य है-

शशि के दर्पण में देख देख,
मैंने सुलझाये तिमिर केश,
गूंधे चुन तारक पारिजात,
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष।[1]

अथवा-

रंजित कर दे यह शिथिल चरण
ले नव अशोक का अरूण राग,
मेरे मण्डन का आज मधुर ला रजनीगंधा का पराग
यूथी की मीलित कलियों से
अली दे मेरी कबरी संवार।[2]

महादेवी का काव्य 'यामा', 'नीहार' से शुरू हुआ जो आगे चलकर 'रश्मि' के सम्पर्क से 'नीरजा' के रूप में विकसित होकर 'सान्ध्यगीत' के साथ रात्रि पर्यनत प्रज्ज्वलित रहकर साधना की अमर दीपशिखा होकर अपने गन्तव्य तक पहुँचने के बाद पूरी हो गई है। इन काव्यों में जगत् की स्थित, जीव का समग्र विकास, निर्वेद का अन्वेषण और ब्रह्म के साथ एकाएक होने की समस्त क्रियाएँ अभिनव रूप में विन्यस्त है।

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 255.
2. वही, पृ० 217.

सृष्टि का आदि रूप 'नीहार' जो परिवर्तनशील है। वस्तुतः जागतिक प्रपंच में पड़कर जीव ब्रह्म को भूल सा जाता है, परन्तु जगत् की इस नश्वरता का भान होते ही उसे पश्चाताप करना पड़ता है। ब्रह्म एवं जीव के बीच यदि आसीा तथा लगनशीलता रही तो वे दोनों बहुत दिनों तक अलग नहीं रह सकती हैं- उदाहरण-

पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की व्रीड़ा, तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा,
तुममें ढूँढूगी पीड़ा।[1]

जीव जब ज्ञानयुक्त होता है जब उसी ब्रह्म को जानने की इच्छा होती है। 'नीहार' के बाद 'रश्मि' की रचना हुई, जिसकी 'प्रश्न' शीर्षक कविता की निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली सांझ गुलाबी प्रात,
मिटाता रंगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार?[2]

जीव ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म के समीप जाकर अपना जीवन कमल विकसित करता है। 'नीरजा' में कवयित्री पूरे उत्साह के साथ ब्रह्म साक्षात्कार के लिए आगे बढ़ती है-

जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज,
खिल उठे निरूपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात!
जीवन-विरह का जलजात।[3]

---

1. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 32.
2. वही, पृ० 73.
3. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० 143.